त्रिवेणी के तीन रत्न

डॉ. सपना कुमारी*

'त्रिवेणी' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के तीन समालोचनात्मक प्रबंधों–जायसी ग्रंथावली की भूमिका, भ्रमरगीतसार की भूमिका, तुलसी ग्रंथावली की भूमिका के विशिष्ट अंशों का संकलन है। 'त्रिवेणी' के संग्राहक श्री कृष्णानंद जी (प्रधानाचार्य, दयानंद महाविद्यालय, वाराणसी) हैं। इस प्रकार 'त्रिवेणी' के ये तीन अमूल्य रत्न हैं –

i) मलिक मुहम्मद जायसी,
ii) महाकवि सूरदास एवं
iii) गोस्वामी तुलसीदास

इस पुस्तक (त्रिवेणी) के द्वारा हम जायसी, सूर एवं तुलसीदास के साहित्य को आचार्य शुक्ल की दृष्टि से सुगमता से समझ सकते हैं।

एक समालोचक के लिए यह आवश्यक होता है कि वह सहृदय तथा रसिक हो, क्योंकि समालोचक के भावों की विवेचना ही समालोचना होती है। इस तरह समालोचना (सम+आलोचना) के चार पक्ष होते हैं –

क) व्याख्या या विवेचन (भावग्रह और समीक्षा के द्वारा),
ख) निर्णय या मूल्य निर्धारण,
ग) तत्त्वनिरूपण एवं
घ) आत्माभिव्यंजन।

इन प्रबंधों में आचार्य शुक्ल ने कवियों और काव्यों के संबंध में मुख्य रूप से निम्नांकित विषयों पर विचार किया है– (i) काल और परिस्थिति, (ii) परंपरा और संप्रदाय, (iii) कवि परिचय, (iv) काव्य वस्तु, (v) मत और सिद्धांत, (vi) आदर्श भावना, (vii) काव्य पद्धति, (viii) भावुकता और स्वभाव चित्रण, (ix) कविकर्म, (x) भाषा और उस पर अधिकार, (xi) काव्य के लिए विशेष गुण और दोष तथा (xii) साहित्य में काव्य और कवि का स्थान।[1]

जायसी निर्गुणधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि, तुलसी सगुणधारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि और सूर सगुण धारा की कृष्ण–भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। जायसी, सूर एवं तुलसी के संबंध में शुक्लजी के हृदय का और साहित्य के यथार्थ निर्णय का एक संयोग हुआ है। तुलसी संबंधी प्रबंध का उपसंहार करते हुए उन्होंने लिखा है– 'भाव और भाषा' दोनों के विचार में गोस्वामी

***स्नातक हिन्दी (भाषा) शिक्षिका**

जी का अधिकार अधिक विस्तृत है। जायसी संबंधी प्रबंध के उपसंहार में उन्होंने लिखा है– प्रबंध क्षेत्र में तुलसीदास का सर्वोच्च आसन है उसका कारण यह है कि वीरता, प्रेम आदि जीवन का कोई एक ही पक्ष न लेकर उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को लिया है और उसके भीतर आनेवाली अनेक दशाओं के प्रति अपनी गहरी अनुभूति का परिचय दिया है। जायसी का क्षेत्र तुलसी की अपेक्षा परिमित है, पर प्रेमवेदना अत्यंत गूढ़ है। सूर संबंधी प्रबंध में उन्होंने यह विवेचन किया कि शक्ति, शील और सौंदर्य भगवान की इन तीन विभूतियों में सूर ने केवल सौंदर्य तक ही अपने को रखा, जो प्रेम को आकर्षित करता है। शेष दो विभूतियों को भी लेकर भगवान के लोकरंजनकारी स्वरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा हमारे हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास ने की है और फिर तुलसी पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि केवल एक ही महात्मा और हैं, जिनका नाम गोस्वामी जी के साथ लिया जा सकता है और लिया जाता है। ये हैं प्रेमस्तोत्रस्वरूप भक्तवर सूरदासजी। जब तक हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषी हैं तब तक सूर और तुलसी का जोड़ा अमर है।[2]

मलिक मुहम्मद जायसी : जायसी की तीन पुस्तकें प्रख्यात हैं– 'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम'। जायसी की लिखी 'पद्मावत' प्रेमगाथा का उत्कर्ष है। पद्मावत का प्रेम वह प्रेम है जो गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन आदि से बैठे बिठाए उत्पन्न होता है और नायक और नायिका को संयोग के लिए प्रयत्नवान करता है। जायसी के श्रृंगार में मानसिक पक्ष प्रधान है शारीरिक पक्ष गौण है। केवल मन का उल्लास और वेदना है जो प्रयत्न के द्वारा किया गया है और उसकी कठिनता से नायक के प्रेम को नापा गया है। जायसी ने आगे चलकर नायक और नायिका दोनों के प्रेम की तीव्रता समान करके दोनों आदर्शों को एक में मिला दिया है।

जायसी ऐकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच–बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं, इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है। उसमें भावनात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है। पर वह पूर्ण रूप से जीवनगाथा नहीं बल्कि प्रेम–गाथा है।

जायसी का विरह वर्णन कहीं–कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गांभीर्य बना हुआ है। इनकी अत्युक्तियाँ बात की करामात नहीं जान पड़तीं, हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द संकेत प्रतीत होती हैं। उनके अंतर्गत जिन पदार्थों का उल्लेख होता है वे हृदयस्थ ताप की अनुभूति का आभास देनेवाले होते हैं। बाहर–बाहर से ताप की मात्रा नापने वाले मानदंड मात्र नहीं।[3]

जायसी का विरह वर्णन बड़ा विशद् है। इन्होंने विरहग्रस्त प्रेमी और प्रेमिका के साथ सारे संसार की सहानुभूति दिखलाई है और सब चराचर पशु–पक्षी आदि को विरह–वेदना से व्याप्त बताया है। जैसे गेहूँ का ह्रदय भी विरह के कारण फटा हुआ है और कौआ विरह के कारण काला है। कहीं–कहीं इनका विरह वर्णन अत्युक्ति की मात्रा को पहुँच गया है।

जायसी बहुश्रुत थे। उन्हें ज्योतिष, हठयोग और शतरंज आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त है। उन्होंने अपने ग्रंथ ठेठ अवधी भाषा में लिखे हैं। इनकी अलंकार योजना बहुत सुंदर है। इनके अलंकार भावों के साथ गुँथे हुए हैं।

जायसी में रमणीय और सुंदर अद्वैती रहस्यवाद है, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है। ये सूफियों की भक्तिभावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप–माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों का 'पुरूष' के समागम के हेतु प्रकृति के श्रृंगार, उत्कंठा या विरहविकलता के रूप में अनुभव करते हैं।

महाकवि सूरदास : महाकवि सूरदास का निवास स्थान रूनकता ग्राम (रेणूका क्षेत्र) में बताया गया है। यह स्थान आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क पर है। कहा जाता है कि सूरदासजी ब्रह्मभट्ट थे। ये सात भाई थे जिनमें छः की मौत मुसलमानों के साथ युद्ध के दौरान हो गई थी और तब ये अपने भाइयों की खोज में जाते समय अपनी दृष्टिहीनता के कारण एक कुँए में गिर पड़े और छः दिन वहाँ पड़े रहे। सातवें दिन भगवान कृष्ण ने इनको दृष्टि प्रदान कर अपने दर्शन कराए। किंतु इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि जिन नेत्रों से मैंने अपने भगवान को देखा है उससे किसी को न देखूँ। अतः वे फिर नेत्रहीन हो गए। इसी घटना के संबंध में एक दोहा प्रचलित है –

''बाँह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिके मोहि।
हिरदे ते जब जाहुगे, मर्द बंदौंगो तोहि।।''[4]

हालांकि इस दोहे की प्रमाणिकता में संदेह है।

डॉ0 फणीश सिंह के अनुसार इनके पाँच ग्रंथ बताये जाते हैं– (i) सूर–सागर, (ii) सूर–सारावली, (iii) साहित्य–लहरी, (iv) नल–दमयंती तथा (v) व्याहलो।

इनके अंतिम दो ग्रंथ अप्राप्य हैं। इनका उल्लेख मिश्र बंधुओं ने 'हिन्दु–नवरत्नों' में किया है पर देखे उन्होंने भी नहीं हैं।

सूरदास जी की कविता में यद्यपि सभी रसों का पुट मिलता है, लेकिन उसमें श्रृंगार, वात्सल्य और शांत रस की प्रमुखता है। ये तीनों रस मनुष्य जीवन की तीनों अवस्थाओं से संबंध रखते हैं।

सूर का भ्रमरगीतसार वियोग–श्रृंगार का एक उत्कृष्ट ग्रंथ तो है ही, साथ ही उसमें सगुण और निर्गुणवाद का भी सुंदर का काव्य विवेचन है। इसके माध्यम से सुर ने निर्गुणवाद पर सगुणवाद की विजय दिखाई है। भ्रमरगीत प्रसंग के इन पदों में गोपियों के मार्मिक उद्गार के साथ–साथ पुष्टि–मार्गीय भक्ति–सिद्धांतों का सुंदर रीति से प्रतिपादन भी हो गया है। गोपियों के व्यंग्य और उपालम्भ उनकी सजीवता के परिचायक हैं। सूर की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें कहीं–कहीं संस्कृत का भी पुट है, किंतु अधिक नहीं। उनकी भाषा में माधुर्य गुण पूर्णतया विद्यमान है। सूर की भाषा में पूर्वी प्रयोग जैसे–मोर, हमार, कीन आदि भी यत्र–तत्र मिलते हैं।

सूरदास की दीक्षा वल्लभ–संप्रदाय की है। उनकी उपासना बालकृष्ण की थी और भक्ति सखा–भाव की। सूर को वचन रचना की चतुराई और शब्दों की क्रीड़ा का भी पूरा शौक था। उनकी प्रकृति कुछ क्रीडाशील थी। उन्हें कुछ खेल–तमाशे का भी शौक था। लीला पुरुषोत्तम के उपासक कवि में यह विशेषता होनी ही चाहिए। अपनी इसी शब्द कौशल की प्रवृत्ति के कारण सूर ने व्यवहार के कुछ पारिभाषिक शब्दों को लेकर भी एकाध जगह उक्तियाँ बाँधी हैं। जैसे–

''साँचो सो लिखवार कहावै।
कायाग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै।
मन्मथ करै कैद अपनी में, जान जहतिया लावै।।''[5]

गोस्वामी तुलसीदास : प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल जाता है कि वह किसी आख्यान के मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान कर पाता है या नहीं। रामकथा के भीतर ये स्थल अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं –राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर रामविलाप, भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामीजी ने अच्छी तरह पहचाना है तथा उनका अधिक विस्तृत और विशद् वर्णन उन्होंने किया है।

राम का लक्ष्मण और सीता के साथ वन–वन फिरने का मर्मस्पर्शी दृश्य तुलसीदास ने दिखाया है। चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। यह अपूर्व मिलन है। राम को मनाने जाने के क्रम में रास्ते में भरत को जहाँ पता चलता है कि यहाँ राम–लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उस स्थल को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर जाते हैं –

''राम बासस्थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके।।''[6]

तुलसीदास ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं – रामचरितमानस (सं0–1631), रामलला नहछू (सं0–1643), वैराग्य संदीपनी (सं0–1669), बरवै रामायण (सं0–1669),

पार्वती मंगल (सं0–1649), जानकीमंगल (सं0–1643), रामाज्ञा प्रश्न (सं0–1669), कवितावली, गीतावली (सं0–1627), कृष्ण गीतावली (सं0–1626), विनय पत्रिका, दोहावली (सं0–1640)।

गोस्वामी जी ने अपने समय की जनता के हृदय से हृदय मिलाकर उसके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति की है। ऐसा कोई रस नहीं जिसका उनके काव्य में पूर्ण परिपाक न हुआ है, ऐसा कोई भाव नहीं जिसकी सुंदर व्यंजना न हुई हो। तुलसी ने छंद रचना की सभी प्रणालियों को अपनाया। उनकी भाषा, भाव, शैली एवं छंद–रचना के विषय में विचार करने पर हम कह सकते हैं कि तुलसीदास अपने समय के प्रतिनिधि कवि हैं। तुलसी की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी रही। उन्होंने अपने काव्य में भक्ति के साथ, शील, आचार, मर्यादा और लोकसंग्रह का संदेश दिया था। हिन्दी में लिखने के कारण तुलसीदास को पंडित समाज के विरोध का सामना करना पड़ा; किन्तु उन्होंने उसकी परवाह न की। वे उत्तम भाव चाहते थे, वे भाषा के पीछे नहीं पड़े थे। इस मामले में वे बड़े उदार और प्रगतिशील थे। जैसे –उनका सिद्धांत स्पष्ट था –

''का भाषा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लैं करें कमाँच।।''[7]

संदर्भ–निर्देश :

1. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–07.
2. .'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–09.
3. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–39.
4. हिन्दी साहित्य एक परिचय –डॉ0 फणीश सिंह, पृ0 सं0–75.
5. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–65.
6. 'त्रिवेणी', संपादक–कृष्णानंद, पृ0 सं0–67.
7. हिन्दी साहित्य एक परिचय –डॉ0 फणीश सिंह, पृ0 सं0–75.

उग्रवाद–भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

डॉ. अजय कुमार सिंह*

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

1. उदारवाद 2. उग्रवाद 3. आतंकवाद

यह निर्विवाद रूप से हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में, उदारवाद, उग्रवाद और आतंकवाद तीनों की अपने–अपने महत्त्व है और हम एक दूसरे के महत्त्व को थोड़ा भी कम नहीं कर सकते। लेकिन ये मूलतः यहाँ – उग्रवाद और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रकाष डाल रहा है।

1885 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना हुई। इस दल ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करना प्रारंभ किया। 1885 से 1905 तक कांग्रेस पर दादा भाई नॉरोजी, पीरोज षाह मेहता, दीनषा वाचा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, वोमेष बनर्जी और गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नेता का प्रभाव था। वे लोग उदारवादी और परिमित राजनीति और साधनों में विश्वास करते थे। इसी कारण उन्हें उदारवादी की संज्ञा दी गयी। ये नेता क्रमिक सुधार और अंग्रेजों से समन्वय करके स्वतंत्रता प्राप्त करने के पक्ष में थे। अतः उन्होंने संवैधानिक और शांतिपूर्ण तरीकों को अपनाने पर बल दिया। रानाडे ने इन्हें विचार दिया था कि उस वस्तु की अथवा उन आदेशों की झूठी आशा ही मत करो जो मिलनी असंभव है।

किन्तु बीसवीं सदी के प्रारंभ में कांग्रेस में एक नए तरूणदल का उदय हुआ जो उदारवादी नेताओं के उद्देश्यों और साधनों के आलोचक थे। वे तरूण लोग चाहते थे कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य होना चाहिए जिसे वे आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता से प्राप्त कर सकें। इन नेताओं में पंजाब के लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक और बंगाल के विपिन चन्द्र पाल प्रमुख थे जिन्हें संक्षेप में लाल–पाल–बाल कहा जाता है।

इनके साधनों में प्रमुख थे– स्वदेशी, बहिष्कार, अहिंसात्मक प्रतिरोध, राष्ट्रीय शिक्षा, हड़ताल, प्रदर्शन इत्यादि। उग्रवादियों ने उदारवादियों के साधनों को भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी। उन्होंने इन साधनों को केवल समय की बर्वादी बताया। तिलक ने गोखले के संवैधानिक साधनों को प्रभावहीन बताया क्योंकि हमारे देश

***असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, अल्लामा ईकबाल कॉलेज, बिहारशरीफ, नालन्दा, (बिहार)**